जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ५९ अंक - ९
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

# आर्य-संसार

भाद्र-आश्विन : सम्वत् २०७३ वि०

सितम्बर – २०१६

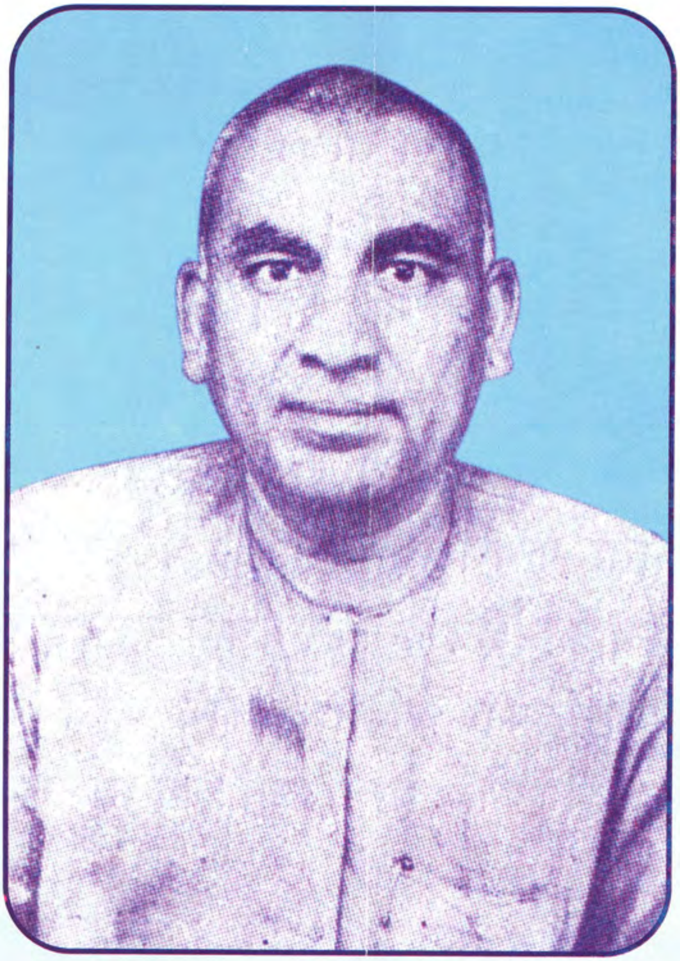

श्रीकृष्ण जी शर्मा

(विशेष विवरण पृष्ठ २ पर)

# आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

## श्रावणी उपाकर्म एवं वेद प्रचार सप्ताह

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा श्रावणी पर्व एवं वेद प्रचार सप्ताह बृहस्पतिवार १८ अगस्त से बृहस्पतिवार २५ अगस्त २०१६ पर्यन्त आर्यसमाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी में आयोजित किया गया । इस अवसर पर प्रतिदिन प्रातः ७ बजे से ९.३० बजे तक ऋग्वेद पारायण यज्ञ आचार्य डॉ० वेदपाल जी (मेरठ) के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ । ऋत्विकगण के रूप में वेद पाठ कर रहे थे — पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० नचिकेता भट्टाचार्य, पं० देवनारायण तिवारी, पं० वेदप्रकाश शास्त्री, पं० कृष्णदेव मिश्र, पं० योगेशराज उपाध्याय और पं० अर्चना शास्त्री।

प्रतिदिन सायंकाल ७.३० बजे से ८ बजे तक ब्रह्मचारी श्यामानन्द जी तथा श्रीमती वेदप्रभा जी द्वारा भजन तदुपरान्त आचार्य डा० वेदपाल जी ने ८ बजे से ९ बजे तक वेदकथा प्रस्तुत की। वेदकथा के प्रत्येक दिन के विषय थे — वेद-प्रासंगिकता, सच्चा मित्र, सफलता का आधार, तमस् के पार, सौन्दर्य, महर्षि दयानन्द-चिन्तन की प्रासंगिकता, पानी में प्यासा ।

**श्रीकृष्ण जन्माष्टमी :-** २५ आगस्त २०१६ को सायं ७ बजे से योगेश्वर श्री कृष्ण जी की जन्म जयन्ती आचार्य डा० वेदपाल जी की अध्यक्षता में मनायी गयी । आचार्य डा० वेदपाल जी ने योगेश्वर श्रीकृष्ण के जीवन के राष्ट्रीय स्वरूप पर अपने विचार प्रस्तुत किये । इस अवसर पर श्रीमती सुमन आर्य (समस्तीपुर) द्वारा भजन तथा आचार्य राहुलदेव जी, पं० देवनारायण तिवारी, श्री मनीराम आर्य जी ने भी अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये ।

# श्रीकृष्ण जी शर्मा

शर्माजी बिहार सभा से पृथक् होकर कलकत्ता आये और यहाँ के कार्यक्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से जुट गये । श्रीकृष्णजी शर्मा बिहार प्रान्त के निवासी थे । सादा आडम्बरहीन जीवन आर्य मिशनरी का एक समर्पित स्वरूप उपस्थित कर देता था । जिन दिनों श्री शर्माजी आर्य समाज कलकत्ता में रहते थे, उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल का कोई अलग से कार्यालय या भवन न था । यहीं १९, विधान सरणी का मन्दिर प्रतिनिधि सभा के कार्यालय और स्थान के रूप में व्यवहार किया जाता था । पं० श्री शर्मा यहीं आर्यसमाज मन्दिर की गैलरी में रहते थे । उस समय और भी एक दो-पंडित प्रचार कार्य के लिए प्रतिनिधि सभा में सेवारत थे । इन सबके सहारा थे श्री हरिगोविन्द जी गुप्त, जो प्रान्तीय सभा और स्थानीय आर्यसमाज के प्राण थे । श्रीकृष्णजी शर्मा बृहत्तर कलकत्ता के मिल अंचलों, काकीनाड़ा, बैरकपुर आदि क्षेत्रों में प्रचार किया करते थे । उन दिनों यातायात की सुविधा न थी, खाने-पीने का भी कष्ट था, कहीं चना-मूढ़ी तो कहीं दही-चूड़ा, नहीं तो जो कुछ भी जीवन चलाने लायक मिल जाता था, वही थोड़ा-बहुत खा-पीकर ये विद्वान् लोग प्रचारकार्य में समर्पित थे । वे तपस्या के दिन थे, आज के सुविधा सम्पन्न विलासी जीवन की भूमिका में उन्हें सोचना भी कठिन जान पड़ता है ।

**(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)**

ओ३म्

# आर्य-संसार


वर्ष ५९ अंक — ९
भाद्र-आश्विन २०७३ वि०
दयानन्दाब्द १९२
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११७
सितम्बर — २०१६

*आद्य सम्पादक*
***प्रो० उमाकान्त उपाध्याय***
*(स्मृति शेष)*

*सम्पादक :*
**श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल**

*सहयोगी संपादक :*
**श्रीमती सरोजिनी शुक्ला**
**श्री सत्यप्रकाश जायसवाल**
**पं० योगेशराज उपाध्याय**



शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये


## इस अंक की प्रस्तुति


| | | |
|---|---|---|
| १. आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ | | २ |
| २. इस अंक की प्रस्तुति | | ३ |
| ३. सब ओर से कल्याणकारी (४४) ज्ञान-कर्म मिले | वेद-वीथिका से | ४ |
| ४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र | पं० लेखराम द्वारा संकलित | ८ |
| ४. श्रावणी उपाकर्म—एक पर्व, एक परम्परा | प्रो० ओमकुमार आर्य | ११ |
| ५. यज्ञ किसे कहते हैं | पं० उम्मेद सिंह, 'विशारद' | १५ |
| ६. हिन्दी साहित्य को महर्षि दयानन्द का अवदान | परीक्षित मंडल प्रेमी | १८ |
| ७. कर्मफल सिद्धान्त | सत्यप्रकाश जायसवाल | २३ |
| ८. गौरक्षा बनाम गौ-पालन | योगेशराज उपाध्याय | २४ |
| ९. बाल जगत् - सिर पर डंडा | | २७ |
| १०. सूचना | | २८ |



## आर्य समाज कलकत्ता

*१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६*

*दूरभाष : २२४१-३४३९* *email : aryasamajkolkata@gmail.com*



'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

# सब ओर से कल्याणकारी ज्ञान-कर्म मिले

**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।**
**देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।।**

यजु० २५-१४

**शब्दार्थ :-**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| आ | = | अच्छी तरह | नः | = | हमारी |
| नः | = | हमें | यथा | = | जिससे |
| क्रतवः | = | ज्ञान, कर्म | सदमिद् | = | सदा |
| आ+यन्तु | = | आवें, प्राप्त हों | वृधे | = | वृद्धि, उन्नति |
| विश्वतः | = | सब ओर से | असन् | = | होवे |
| अदब्धासः | = | दम्भ हिंसा रहित | अप्रायुवः | = | अप्रमादी, सावधान |
| अपरीतासः | = | सरल, अचंचल | रक्षितारः | = | रक्षक |
| उद्भिदः | = | उन्नति कारक | दिवे दिवे | = | प्रतिदिन |
| देवाः | = | देव | | | |

**भावार्थ :-कल्याणकारी ज्ञान विचार कर्म हमें सब ओर से प्राप्त हों । वे ज्ञान आदि हिंसारहित, अचंचल एवं उन्नति कारक हों । देव विद्वान् सावधानी से हमारी रक्षा करें जिससे सदा हमारी उन्नति होती रहे ।**

**विचार विन्दु :**

१. **कल्याण का व्यष्टि-समष्टि रूप ।**
२. **व्यष्टि (व्यक्ति) के साथ समष्टि का ज्ञान, एकाग्रता, अहिंसा काम्य है ।**
३. **इस कामना में विद्वानों का योगदान ।**
४. **कल्याण के लिए ज्ञान, विद्या, विचार, कर्म में सावधानी अपेक्षित ।**

## व्याख्या

इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि हमें सब ओर से कल्याणकारी ज्ञान और कर्म प्राप्त हों । सब ओर का अर्थ पूर्व पश्चिम आदि भौतिक दिशाएं नहीं है । व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, सबसे हमें ज्ञान, विचार, कर्म मिलता है । स्कूल, कालेज, साहित्य, पत्र-पत्रिका, मीडिया, कला, चित्रकारी आदि भी ज्ञान, विचार-कर्म आदि प्राप्त करने के स्रोत हैं । यहां कल्याण के लिए भद्र शब्द का प्रयोग किया गया हैं । भद्र की परिभाषा स्वयं वेद में की गई हैं -

**'सर्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवाः'।**

भद्र क्या है ? मंत्र में कहा है कि वह सब भद्र होता है जिसकी देवता रक्षा करते हैं। मनुष्य जब कोई अच्छा कार्य करता है तो उसके चेहरे पर एक आभा, तेज का उदय हो जाता हैं। आपने किसी अन्धे को रास्ता दिखा दिया, किसी सुपात्र की सहायता कर दी, उसकी सेवा कर दी, तो आपके चेहरे पर एक आभा-मण्डल का उदय हो जाता है। यह भद्र है। हम देखते हैं कि देवताओं के चित्रों में उनके मुख-मण्डल के चारों ओर एक आभामय वृत्त सा बना रहता है। यह प्रभा-मण्डल है। यह हर व्यक्ति, समाज, घर, मन्दिर, सत्संग भवन, सब जगह बनता है। एक जंगल में स्थित मन्दिर में डाकू डेरा डालते थे। दुराचारी, दुराचार का अड्डा बनाये रखते थे। कभी एक सन्त घूमता-घामता वहां पहुंच गया और उसने उस मन्दिर के वातावरण में दुष्टता के प्रभा-मण्डल का अनुभव कर लिया। वह वहां से उठकर दूसरी जगह चला गया। यह प्रभा-मण्डल हर घर में, हर कमरे में बना रहता है। थोड़ी सी साधना से प्रभा मण्डल का प्रत्यक्ष हो जाता है।

मंत्र में प्रार्थना है कि 'विश्वतः' अर्थात् चारों ओर से भद्र कर्म और ज्ञान हमें प्राप्त हों। उनमें दम्भ और हिंसा न हो। निर्माण व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबका होता है। निर्माण चाहे व्यक्ति का हो चाहे राष्ट्र का हो, इसके मुख्य स्रोत विद्वान, साहित्यकार और अध्यापक होते हैं। कहा जाता है 'साहित्य समाज का दर्पण होता हैं।' यह तो है ही, यह साहित्य की प्रकृति ही है। किन्तु साहित्य शब्द का अर्थ ही है-'हितेनसह' अर्थात् हित के साथ। जिसमें हित न हो वह उच्च कोटि की कहानी, नाटक, उपन्यास आदि भले हो जाये, किन्तु उसे साहित्य में सम्मिलित करना कठिन है। अमर साहित्यकार प्रेमचन्द जी कहते थे कि साहित्य दर्पण है, यह ठीक है, पर उसे दीपक भी होना चाहिए। साहित्य अन्धकार में प्रकाश दिखावें। साहित्य सरल और उन्नति का सुमार्ग दिखाने वाला होना चाहिए।

यही काम विद्या और ज्ञान के दाता अध्यापकों का भी होना चाहिए। अध्यापक भी अपने युग का निर्माता होता है। गांधी-युग में प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय स्वतंत्रता की भावनाओं के केन्द्र हुआ करते थे। अध्यापक अपने चरित्र से और अपनी विद्या से विद्यार्थियों को प्रभावित करते रहते हैं और उसी के अनुरूप समाज और राष्ट्र का निर्माण होता रहता है। जिन दिनों बलिदानी गीत गाये जाते थे, उन दिनों देश के लिए सर्वस्व बलिदान की भावना विद्यार्थियों में राष्ट्र के अध्यापक और साहित्यकार ही प्रमुख रूप से भरा करते थे। उस समय फूल भी कामना करता था-

**'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं**
**मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।**
**मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने,**
**जिस पथ जाएं वीर अनेक ।।'**

'मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएं वीर अनेक' यह फूल ही की चाह नहीं, राष्ट्र की चाह थी। इसी तरह के ज्ञान और कर्म से मनुष्य का उत्थान होता है और राष्ट्र का निर्माण होता है।

वस्तुतः मनुष्य श्रद्धामय है। जिसकी जिस तरह की श्रद्धा होती है वह उसी तरह का बन जाता है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :-

**'स्वत्वानुरूप सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।**
**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।'**

मनुष्य जिस तरह के कार्यों विचारों पर श्रद्धा करने लगता है उसी प्रकार व्यक्ति और समाज का निर्माण होने लगता है । समाज में, समाज के चिन्तन में यदि धूर्तता आ गई और नीति बन गई कि बड़ी मछली को अधिकार है कि वह छोटी मछली को खा जाये, तो इस समाज में न कल्याण आयेगा और न समाज की रक्षा हो सकेगी । इसीलिए मंत्र में प्रार्थना है कि हमारे देव, विद्वान और नेता हमें प्रतिदिन उपदेश करें और हम अपनी उन्नति के साथ अपने समाज और राष्ट्र की भी उन्नति करते चलें ।

**व्यष्टि एवं समष्टि का निर्माण -**

प्रस्तुत मंत्र व्यष्टि के कल्याण एवं उन्नति तथा समष्टि के कल्याण एवं उन्नति पर समान रूप से चरितार्थ होता है । व्यष्टि का अर्थ है—एक इकाई और समष्टि का अर्थ है सम्पूर्ण समाज । प्रत्येक मानव व्यष्टि तथा समाज और राष्ट्र समष्टि के रूप में है । व्यष्टि और समष्टि दोनों की शारीरिक, भौतिक, बौद्धिक एवं मानसिक तथा आत्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कल्याण में सम्मिलित है ।

आयुर्वेद में कहा गया है —

**'त्रयोऽस्कन्धाः शरीरस्य-भोजनं, निद्रा, ब्रह्मचर्यमिति'**

अर्थात् शरीर के तीन खम्भे हैं--भोजन, निद्रा और ब्रह्मचर्य अर्थात् सदाचार । इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति की उन्नति इस बात पर निर्भर करेगी कि उसे हितकारी भोजन मिले, उसके सोने जागने का ठीक नियम रहे और व्यक्ति सदाचारपूर्वक अपने शरीर के बहुमूल्य तत्व, शुक्र, ओज-तेज की रक्षा करें ।

समष्टि की उन्नति इन तत्वों के अतिरिक्त सामूहिक, राष्ट्रीय सोच चिन्तन पर भी निर्भर करती है । जिस प्रकार का विचार और वातावरण समाज में बनता है, वैसी ही समष्टि की स्थिति भी बन जाती हैं। व्यक्ति या समष्टि, दोनों की उन्नति में विद्वान नेता, समाज के अग्रकर्ता, मुखिया लोगों की भूमिका पर जोर दिया गया है । मंत्र कहता है कि ये विद्वान् नेता लोग इस तरह का वातावरण पैदा करें कि देश का प्रत्येक व्यक्ति और सम्पूर्ण समाज सदाचार, सद्विचार और उन्नतिशीलता के प्रति श्रद्धालु होकर अपने कार्यक्षेत्र में तत्पर हो जायें । इस बात को एक उदाहरण से समझते हैं —

हमें अच्छी तरह स्मरण है कि हमारे गावों में सन् १९३४-३५ के आस-पास जब थानेदार और पुलिस के लोग गांव में आते थे तो माताएं, गांव की स्त्रियां बच्चों को घर के अन्दर करके घरों का दरवाजा बन्द कर लेती थीं । गांवों के सामान्य निवासी, खेतिहर किसान, अच्छे खाते-पीते लोग भी थानेदार के सामने चारपाइयों पर नहीं बैठते थे । समय बदला, स्वतंत्रता के संघर्ष का युग बलवान् हो उठा और १९४२ की प्रसिद्ध क्रांति में जब 'करो या मरो', 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के नारे लगने लगे तो देश की जनता में इतना नैतिक बल आ गया कि वही लोग जो साधारण से सिपाहियों से डरते थे, हजारों-हजार की संख्या में सड़कों पर उतर आये और अंग्रेजों की फौज के सामने भी, संगीनों की नोंक के सामने भी डट गये —

**'नहीं हम डरने वाले हैं, तेरी इन गन मशीनों से**

**चला दोगे अगर गोले तो हम सीना लड़ा देंगे ।'**

यह है नेता, अग्रकर्ता का संकल्प जो देश की जनता का मानसिक, चारित्रिक उत्थान करता है ।

देश स्वतंत्र हुआ, २५-३० साल या ४० साल का समय गया । वे क्रांति के विचार नेताओं, देश के कर्णधारों के जीवन से निकल गये । शराब के ठेके, बढ़ने लगे, सरकार को रुपया कमाने की धुन सवार हो गयी । पश्चिमी विचारों ने नेताओं के जीवन से त्याग, तपस्या, सादगी, सरलता, श्रद्धा, निष्ठा, सब छीन ली । गांधी, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजर्षि टण्डन का युग बदल गया । आज करोड़पतियों का दल संसद में बैठा है । शराब और कदाचार का बोलबाला हो गया । अब जनता में भी, नेताओं में भी, सम्पूर्ण वातावरण में देश-भक्ति, त्याग, तपस्या कुछ न रह गयी । यहां तक कि विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकों में परतंत्रता के युग में भी राष्ट्र भक्ति की शिक्षा रहती थी । आज वह सब समाप्त हो गयी।

मंत्र की आज के युग में यह प्रासंगिकता है कि समाज के नेता, विद्वान व्यक्ति और राजनीति के नेता समाज को कल्याणकारी ज्ञान, कर्म, चरित्र की ओर सदा प्रेरणा देते रहें ।

---

*(पृष्ठ २६ का शेषांश)*

खेती ही कृषि उद्योग का भविष्य है । यह सारा का सारा जैविक कृषि का ढाँचा थोड़े हद तक घरेलू जैविक कचरे पर और अधिकांशतः गोबर और गौ-मूत्र पर ही आधारित रहने वाला है । गोबर से यथाशीघ्र जैविक खाद के उत्पादन की विधियों को उन्नत करने के लिए शोधकेन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए, रासायनिक कीटनाशक और कृमिनाशक (इन्सेक्टिसाइड और पेस्टिसाइड) दवाओं के स्थान पर क्रमशः जैविक दवाओं के निर्माण और उपयोग पर जोर दिया जा रहा है और गो-मूत्र या पशु-मूत्र इन दवाओं के निर्माण के आधार-स्रोत हैं । इच्छुक किसान स्वयं प्रशिक्षण लेकर जैविक खाद और कीटनाशकों का निर्माण छोटे अथवा बड़े पैमाने पर कर सकते हैं अथवा कच्चे माल के रूप में भी गोबर और गौ-मूत्र की आपूर्ति कर सकते हैं । वे किसान या दूसरे ग्रामीण जो गौ-पालन नहीं भी करते, वे भी यदि इससे होने वाली आय के अबाध-स्रोत (पेरिनिअल इनकम) को देखेंगे तो वे भी गौ-पालन करने की ओर प्रोत्साहित होंगे ।

मूल बात यह है कि किसान के सामने यह बात प्रमाणित होनी चाहिए कि दरवाजे पर खड़ी गाय (और बैल भी) दूध न देते हुए भी, बेचने की अपेक्षा आर्थिक रूप से अधिक लाभकारी है। हमें संगठित रूप से प्रयास करके गाय को कत्लखानों के लिए इतनी महंगी बनानी होगी कि वे गाय खरीदना या तो बंद कर दें या फिर बहुत ही कम कर दें ।

मैं फिर यह बात दुहराना चाहूँगा कि गौ-रक्षा के लिए जितने प्रयास हो रहे हैं, जितना मानव-श्रम और पैसा लग रहा है, अगर हम उसका अधिकांश हिस्सा गौ-पालन और गौ-संवर्धन और उससे जुड़े शोध-कार्य की तरफ मोड़ दें तो गौ-रक्षा के आन्दोलन की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी, ये काम अपने आप ही हो जाएगा ।

लेखक : **योगेश राज उपाध्याय**
कोलकाता, मो० ९४३२३१२६३६

# स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र

## प्रथम भाग

## अध्याय- २

(सन् १८२४ ई० से १८७५; तदनुसार सं० १८८१ से १९३१ वि० तक)

**बचपन : वैराग्य : गृहत्याग व संन्यास**

*महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में संवत १८८१ में हुआ था । पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी श्रृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र* — सम्पादक

(गतांक से आगे)

### अलखनन्दा के उद्गम की ओर अलखनन्दा की विकट मारक भंवर से प्रभु कृपा से छुटकारा

एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वतों के मध्य में से होता हुआ अलखन्दा नदी के तट पर जा पहुँचा । मुझे उस नदी के पार करने की तनिक भी इच्छा न थी क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक मंग्रम नामक बड़ा ग्राम देखा । इसलिये अभी उस पर्वत की घाटी में ही चलता हुआ नदी के बहाव के साथ-साथ जंगल की ओर हो लिया । पर्वत, मार्ग और टीले आदि सब हिमाच्छादित थे और बहुत धनी बर्फ उनके ऊपर थी इसलिये अलखनन्दा नदी के उद्गम स्थान तक पहुँचने में मुझको महान् कष्ट उठाने पड़े परन्तु जब मैं वहाँ गया तो अपने आपको नितान्त अपरिचित और विदेशी जाना और अपने चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ खड़ी देखीं तो मुझे आगे जाने का मार्ग बन्द दिखाई दिया । थोड़े समय पश्चात् सड़क पूर्णतया अदृश्य हो गई और उस मार्ग का मुझ को कोई पता न मिला । मैं उस समय चिन्ता में था कि क्या करना चाहिये । विवश होकर मैंने अपने मार्ग की खोज के लिए उस नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया । मेरे पहने हुए वस्त्र बहुत हल्के और थोड़े थे और सर्दी बहुत तीव्र थी । थोड़े ही समय पश्चात् ऐसी प्रबल सर्दी हो गई कि उसका सहन करना असम्भव था । भूख और प्यास ने जब मुझको बहुत ही सताया तो मैंने एक टुकड़ा बर्फ का खाकर उसको बुझाने का निश्चय किया परन्तु उससे कुछ शान्ति प्राप्त न हुई । फिर मैं नदी को पैदल ही पार करने लगा । किसी किसी स्थान पर नदी बहुत गहरी थी और कुछ स्थान पर पानी बहुत कम था परन्तु एक हाथ अथवा आधे गज से कम गहरा कहीं न था परन्तु चौड़ाई अर्थात् पाट में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पाँच गज था । नदी बर्फ के छोटे और तिर्छे टुकड़ों से भरी हुई थी जिन्होंने

मेरे पाँव को अत्यन्त घायल कर दिया और मेरे नंगे पांवों से रक्त बहने लगा। मेरे पाँव शीत के कारण बिल्कुल सुन्न हो गये थे जिसके कारण बड़े-बड़े व्रणों का भी मुझे कुछ समय तक ज्ञान हुआ। इस स्थान पर अत्यन्त शीत के कारण मुझको मूर्च्छा-सी आने लगी। यहाँ तक कि मैं सुन्न होकर बर्फ पर गिरने को था। मैंने अनुभव किया कि यदि मैं यहाँ पर इसी प्रकार गिर गया तो फिर यहाँ से उठना मेरे लिये अत्यन्त कठिन और दुष्कर होगा। अतः बहुत दौड़धूप करके जिस प्रकार हुआ मैं बहुत कठिन चेष्टा करके वहाँ से सकुशल निकला और नदी की दूसरी ओर जा पहुँचा। यद्यपि वहाँ जाकर कुछ समय तक मेरी ऐसी दशा रही कि मैं जीवित की अपेक्षा मानो अधिक मृतकपन की अवस्था में था तथापि मैंने अपने शरीर के ऊपर के भाग को बिल्कुल नंगा कर लिया और अपने समस्त वस्त्रों से जो मैंने पहने हुये थे — घुटनों या पांव तक जंघाओं को लपेट लिया और वहां पर मैं नितान्त शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने के अयोग्य होकर खड़ा हो गया और इस प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूँ परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि सहायता कहीं से आवेगी। सहायता की प्रतीक्षा में था परन्तु बिल्कुल अकेला था और जानता था कि कोई स्थान सहायता का दिखलाई नहीं देता। अन्त में फिर मैंने एक बार अपने चारों ओर देखा और अपने सामने दो पहाड़ी मनुष्यों को आते हुए पाया जो कि मेरे समीप आये और मुझको प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिए बुलाया और कहा कि आओ हम तुमको खाने को भी देंगे। जब उन्होंने मेरे कष्टों को सुना और मेरे वृत्तान्त से परिचित हुए तो कहने लगे कि हम तुमको सिद्धपत (जो कि एक तीर्थ स्थान है) पर भी पहुँचा देंगे परन्तु उनका मुझको यह सब कहना कुछ अच्छा प्रतीत न हुआ। मैंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि महाराज ! खेद है कि मैं आपकी यह कृपायुक्त बातें स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझमें चलने की बिलकुल शक्ति नहीं है। यद्यपि उन्होंने मुझको बड़े आग्रह से बुलाया और आने के लिए बहुत कुछ विवश किया परन्तु मैं उसी स्थान पर पांव जमाए हुए खड़ा रहा और उनके कथन तथा इच्छानुसार उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। जब मैं उनको कह चुका कि मैं यहाँ से हिलने की चेष्टा करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझता हूँ और इस प्रकार कहकर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया अर्थात् उनकी बातों को मैंने फिर न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि अच्छा होता यदि मैं लौट गया होता और इस प्रकार मैंने अपनी शिक्षा और अध्ययन को चालू रखा होता। वे दोनों मनुष्य इतने में वहाँ से चले गये और थोड़े समय में पहाड़ियों के मध्य में अदृश्य हो गये। वहाँ पर जब मुझको कुछ शान्ति प्राप्त हुई तो मैं आगे को चला और कुछ समय तक बासोधा (जो एक तीर्थ-यात्रा का स्थान है) पर ठहर कर और मंग्रम के आसपास से होकर मैं उसी शाम को आठ बजे के लगभग बद्रीनारायण में पहुँचा।

**रावल जी से अन्तिम भेंट –** मुझे देखकर रावल जी और उनके साथी, जो सब घबराये हुए थे, आश्चर्य-चकित रह गये और उन्होंने मुझसे पूछा कि आज सारे दिन तुम कहाँ रहे ? तब मैंने जो कुछ हुआ था अक्षरशः सुना दिया। उस रात्रि को थोड़ा-सा खाना खाकर, जिससे कि मेरी शक्ति नये सिरे

से लौटती हुई प्रतीत हुई—मैं सो गया परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल शीघ्र ही उठा और उठकर रावल जी से आगे जाने की आज्ञा माँगी और अपनी यात्रा पर चल पड़ा और रामपुर को प्रस्थान किया। उस शाम को चलता-चलता मैं एक योगी के घर जा पहुँचा जो एक बड़ा भारी उपासक था और उसके घर पर रात काटी। वह योगी जीवित ऋषियों और साधुओं में एक अत्यन्त ऊँची श्रेणी का प्रसिद्ध ऋषि था और धार्मिक विषयों पर उसके साथ बहुत समय तक मेरी बातचीत हुई।

अपने निश्चय को पहले से अधिक दृढ़ करके मैं अगले दिन प्रातःकाल उठते ही आगे को चल दिया और कई वनों और पर्वतों में से होकर और चिल्कायाघाटी (या चिल्कियां घाट) पर से उतर कर मैं अन्त में रामपुर पहुँच गया और वहाँ पहुँच कर मैंने प्रसिद्ध रामगिरि के गृह पर निवास किया। यह व्यक्ति अपने जीवन की बहुत बड़ी पवित्रता और आत्मिक जीवन की शुद्धता के कारण बहुत विख्यात था। मैंने भी उसको विचित्र स्वभाव का देखा अर्थात् वह सोता नहीं था प्रत्युत सारी रातें बड़े ऊँचे शब्द से बातें करने में व्यतीत कर देता था और वह बातें वह प्रकटतया अपने साथ ही करता प्रतीत होता था। प्रायः बड़े ऊँचे शब्द से हमने उसको चीख मारते सुना और फिर कई बार हमने उसको रोते हुए और चीख मारते अथवा ध्वनि करते हुए पाया परन्तु जब उठकर देखा तो वहाँ उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई मनुष्य दिखाई न दिया। मैं इस बात से अत्यन्त चकित तथा आश्चर्यान्वित हुआ और मैंने उसके शिष्यों आदि से पूछा तो उन बेचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि इसका ऐसा ही स्वभाव है परन्तु कोई मुझको यह न बतला सका कि इसका क्या अर्थ है। अन्त में जब मैंने कई बार उस साधु से निजीरूप से एकान्त में भेंट की तो मुझको विदित हो ही गया कि वह क्या बात थी और इस प्रकार से मैं इस बात का निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ करता है, वह पूरी-पूरी योगविद्या का परिणाम नहीं प्रत्युत उसमें अभी कमी है और यह वह चीज नहीं है जिसकी मुझको खोज है और न यह पूरा योगी है प्रत्युत योग में कुछ निपुणता रखता है।

**काशीपुर आदि की ओर –** उससे विदा होकर मैं काशीपुर गया और वहाँ से द्रोणसागर पहुँचा जहाँ मैंने समस्त शीतऋतु व्यतीत की। हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देह त्याग देना चाहिये ऐसी इच्छा हुई परन्तु यह विचार कर मन में आ गया कि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् देह छोड़नी चाहिये। वहाँ से आगे मुरादाबाद होता हुआ मैं सम्भल में जा पहुँचा और वहाँ से गढ़मुक्तेश्वर को पार करता हुआ फिर गंगा नदी के तट पर आ पहुँचा। उस समय और धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी थीं—शिवसंध्या, हठप्रदीपिका, योगबीज, केसराना संगीत—इन पुस्तकों को मैं अपनी यात्रा में प्रायः पढ़ा करता था इनमें से कुछ के विषय नाड़ीचकायत और नाड़ीचक्र अर्थात् मनुष्य की नाड़ियों को बताने वाली विद्या से सम्बद्ध थे। इनमें ऐसी बातों का ऐसा लम्बा चौड़ा वर्णन किया हुआ था कि मनुष्य पढ़ता-पढ़ता थक जाता था और उनको मैं कभी भी पूर्णरूप से अपनी बुद्धि के वश में न ला सका और न पूर्णरूप से कभी मैं उनको स्मरण कर सका और न पूर्णरूप से समझ सका।

(क्रमशः...)

# श्रावणी उपाकर्म – एक पर्व, एक परम्परा

**– प्रो० ओमकुमार आर्य**

संस्कृत और संस्कतनिष्ठ हिन्दी में 'श्रवण' सुनने को कहते हैं और 'श्रावण' सुनाने को । विक्रमी संवत् में श्रावण = सावन एक महीने का नाम भी है जो गणना-क्रम में पांचवा है, यदि किसी वर्ष इससे पहले कोई अधिक मास हो जाये तो यह क्रम बदल भी सकता है फिर यह छठवें स्थान पर आयेगा। श्रावण मास की पूर्णिमा श्रावणी (सलूमन, राखी) कहलाती हैं जो अपने आप में एक दिन का पर्व भी है और धार्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से वेद-ज्ञान को प्रवचनों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने, सुनाने का अनुष्ठान भी आज के दिन (श्रावणी) से प्रारंभ हुआ करता था । गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति में गुरुकुलों में नये ब्रह्मचारियों हेतु शिक्षण-सत्र का प्रारंभ भी श्रावणी के दिन से ही होता था । सत्रारम्भ तो श्रावणी से होता था किंतु सत्र-समाप्ति=समावर्तन किस दिन होता था इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । हाँ, तैत्तिरियोपनिषद् में गुरुकुलीय शिक्षा विषयक चर्चा पर्याप्त विस्तार से तो मिलती है किंतु सत्रारंभ और सत्र समाप्ति कब होती थी, इसका उल्लेख कम से कम मेरे देखने में नहीं आया । मुझे अपेक्षा रहेगी कि समादरणीय विद्वज्जन कृपा करके मुझे बताने का कष्ट करेंगे, मैं उनका आभारी रहूँगा ।

श्रावणी एक पर्व भी है और एक परंपरा भी । पर्व तो इसलिये है कि यह एक दिन विशेष है जब हम सामाजिक दृष्टि से अपना कोई कार्य कर रहे होते हैं, इसको उपलक्ष बनाकर किसी पारिवारिक, सामाजिक दायित्व का निर्वहण कर रहे होते हैं, कोई यज्ञादि करते हैं, इस अवसर (इस दिन) पर नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का शिक्षा-सत्र प्रारंभ करते हैं आदि-आदि । परंपरा इसलिये है कि यहाँ से सर्व साधारण के कल्याण हेतु एक ज्ञान-सत्र प्रारंभ हो जाता है जो आगामी तीन-चार महीनों तक चलता रहता है, प्राचीन काल से ऐसा होता रहा है, वेदज्ञ-विद्वान्, साधु महात्मा, ऋषि मुनि वर्षाकाल के चलते नगरों के समीप आ जाते थे, वहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था (आश्रमादि) हो जाती थी और गृहस्थ लोग यथा सुविधा वहाँ जाकर सत्संग लाभ प्राप्त करते थे, वेदज्ञान प्राप्त क़रते थे, जीवन को सुखी बनाने का सदुपदेश उक्त साधु, महात्मा उनको देते थे । क्योंकि यह निर्विवाद रूपेण सत्य है कि ज्ञान के बिना सुख नहीं, मुक्ति नहीं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) की सिद्धि का मुख्य ही नहीं एकमात्र हेतु भी ज्ञान ही है । वेद का अषुमत्ता धातुपरक अर्थ भी ज्ञान ही होता है । शास्त्र का कथन है –

ऋते ज्ञानान्न मुक्ति अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति कदापि नहीं होती । गीताकार कहता है कि – न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते ॥

संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र अन्य कुछ भी नहीं है आदि-आदि । अतः श्रावणी पर्व तो है ही, साथ ही परंपरा भी है जो वेद प्रचार के रूप में, पवित्र ज्ञान-सलिला, ज्ञान-भागीरथी के रूप में श्रावणी से लेकर कार्तिक मास की अमावस्या (दीपावली) तक और उससे भी आगे कार्तिक मासान्त तक सतत् प्रवहमान् रहती है और अपने ज्ञानवारि से लोगों के भौतिक, आध्यात्मिक विकार दोष, कल्मषादि को

धोकर उन्हें शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सभी तरह से, रोग रहित करके उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है, उनके लिये अभ्युदय और निश्रेयस् का पथ प्रशस्त करती है और अन्ततोगत्वा उन्हें धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि भी प्राप्त करवाती है । इसलिये श्रावणी वैदिक संस्कृति में एक पावन प्रतीक है । प्रवचनादि के माध्यम से वेद-प्रचार परंपरा का, तीन चार महीने तक चलने वाले ज्ञान-प्रसार सत्र का और विद्वानों के सान्निध्य में रहकर वेद के अध्ययन, अध्यापन, श्रवण, श्रावण की परम्परा का । जैन मत का चातुर्मास भी इसी परम्परा का अंग है, आज भी वेद से जुड़ी संस्थायें और विशेष करके देश, विदेश की सभी आर्य समाजें श्रावणी के आस-पास ही वेद प्रचार-सप्ताहादि का आयोजन किया करती हैं जो इस बात का प्रमाण है कि श्रावणी केवल एक दिन का पर्व न होकर एक परम्परा भी है जो वेद काल से लेकर आज तक अविच्छिन्न रूप में चली आ रही है, इसमें न्यूनाधिक या उतार चढ़ाव तो जरूर हुआ लेकिन यह परम्परा कभी टूटी नहीं, भंग नहीं हुई, इसका पूर्ण विलोप, कभी नहीं हुआ ।

श्रावणी के उपलक्ष्य में करवाया जाने वाला वेद प्रचार एक प्रकार से बहु दिवसीय, विशद सत्संग ही होता है जिसमें हमें आप्त पुरुषों परावरज्ञ, वेदज्ञ विद्वानों का सान्निध्य मिलता है जो हमारे तापत्रय का निवारण करता है, हमें सुख, शांति, आनन्द की अनुभूति करवाता है । एक सुभाषित है —

**चन्दन शीतलं लोके चन्दनादपि चंद्रमा ।**
**चन्द्र चन्दनयो मध्ये शीतला साधु संगति ।।**

अर्थात् लोक में चन्दन शीतल है, चंदन से ज्यादा चन्द्रमा शीतल है किन्तु इन दोनों से भी अधिक शीतल (शांति प्रदाता, ताप शमन करने वाला) है विद्वानों का संग, साधु महात्माओं का संग और श्रावणी के उपलक्ष्य में आयोजित तीन-चार महीने चलने वाला वेद प्रचार का अनुष्ठान एक ऐसा ही धार्मिक, सांस्कृतिक अनुष्ठान है जो हमारे पाप, तापादि का शमन करता है, हरण करता है, हमें शांति देता है ।

पौराणिक परम्परा में ऐतरेयोपनिषद के प्रारंभ में और समाप्ति पर शांतिपाठ का उल्लेख मिलता है जो वेद, वेद-ज्ञान, वेद प्रचार का महत्व और माहात्म्य वर्णित करता है । उपनिषद् का कथन है —

वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो में वाचि प्रतिष्ठितमावि आर्वि में एधि । वेदस्य में आणीस्थ । श्रुतन्मे मा प्रहासी । अनेनाधीतेन अहोरात्राणि संदधाम्मृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद वक्तारमभतु । अवतु मामवतु वक्तारम् । ऐतरेयोपनिषद काव्य में भावानुवाद कुछ इस प्रकार से होगा —

वाणी मन में हो प्रतिष्ठित और वाणी में होवे मन,
दोनों एकरूप हो जायें, ऐसी कृपा करो भगवन् ।
प्राप्त करे हम वेद ज्ञान को वेदमय होवे जीवन,
कभी न छोड़ें साथ हमारा श्रुति ज्ञान और श्रुति वचन ।
स्वाध्याय सत्संगादि में नित्य हमारी रहे लगन,
ऋत और सत्य को अपनायें तेरी भक्ति में रहे मगन ।

ऋत और सत्य के पावन पथ पर तू जिनको प्रेरित करता है,
रक्षा कवच बनकर उनकी तू हर पल रक्षा करता है ।

उपनिषद् का ऋषि हमें यही संदेश देता है कि हम कभी भी वेद से दूर न हों क्योंकि वेद ही सुखी जीवन का आधार है, वेद-ज्ञान ही मुक्ति का सोपान है । श्रावणी से प्रारंभ होकर आगे तीन-चार मास तक चलने वाली वेद प्रचार की परम्परा का भी मुख्य उद्देश्य और लक्ष्य यही है ।

यदि हम एक दिवसीय श्रावणी पर्व, जो वर्तमान में रक्षा बन्धन के नाम से जाना जाता है, पर विचार करें तो भी हमें ज्ञात होता है कि यह पर्व हमारे उच्च नैतिक, पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों का प्रतीक है । भाई बहन के पावन पुनीत प्रेम का प्रतीक है । मध्ययुग से पहले तो रक्षाबंधन के अवसर पर पुरोहित आदि अपने यजमानों की भुजा पर रक्षा-सूत्र बांधकर उनकी (यजमानों) दीर्घायु की शुभकामना किया करते थे, दैवी शक्तियाँ उनकी (यजमानों की) सदा रक्षा करें यह कामना भी किया करते थे । किंतु दासता के काल में, मध्ययुग में इसके विपरीत चलन हो गया, निर्बल वर्ग सबल की कलाई पर सूत्र बांधकर उनसे (सबल से) अपनी रक्षा की कामना करने लगे । कालान्तर में रक्षा सूत्र का बांधा जाना रक्षाबंधन का पर्व बन गया और भाई-बहन तक ही सीमित होकर रह गया । आज के अर्थप्रधान भौतिक वादी दौर में सिक्कों की खनक में पवित्र प्रेम के सुर प्रतिवर्ष क्षीण से क्षीणतर होते जा रहे हैं, भय लग रहा है कि भविष्य में कहीं खो न जायें, सोने चांदी की चमक के आगे कहीं प्यार की पावन आभा फीकी न पड़ जाये, क्रूर पैसावाद कहीं कोमल भावनाओं को कुचल, मसल न देवे । श्रावणी को एक पर्व रूप में बचाकर रखना, इसके स्वरूप को विकृत न होने देना हम सबकी जिम्मेदारी है ।

और यह भी तभी होगा जब हम श्रावणी से संबंधित वेद प्रचार की परम्परा को अक्षुण्ण रखेंगे । वेद सबके लिये समानरूपेण हितकारी, कल्याणकारी सद्ज्ञान का ग्रन्थ है, वेद स्वयं घोषित करता है—

**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः**

वेद सर्वोकृष्ट जीवनोपयोगी विचारों का उत्स है । इसीलिये तो महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा — वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली के अन्तर्गत चतुर्थ अनुवाक् में आचार्य के अग्रलिखित आह्वान को यहाँ उद्धृत करना अत्यन्त समीचीन और प्रासंगिक है —

**आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा**
**वि मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा**
**प्र मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा**
**दमा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा**
**शमायन्तु ब्रह्माचारिणः स्वाहा**

आचार्य शिक्षा-यज्ञ कर रहे हैं और शिक्षार्थी ब्रह्मचारियों का आह्वान करते हुये आहुतियाँ डाल रहे हैं । वे कह रहे हैं कि हे ब्रह्मचारियों तुम वेदज्ञान की प्राप्ति के लिये सभी ओर से मेरे पास चले आओ,

विशेष, लक्ष्य बनाकर विविधता से (सभी प्रकार के) मेरे पास आओ बड़ी संख्या में, प्रचुरता से, प्रकृष्टतया आओ, इन्द्रियां गलत रास्ते पर न जायें, उन पर नियंत्रण के लिये आओ, मन में कुविचार, दुष्प्रवृत्तियाँ पैदा ही न हों, इसके लिये आओ । आचार्य का यह उपर्युक्त आह्वान्, ब्रह्मचारियों को खुला निमन्त्रण वेद से जोड़ने का ही पावन उपक्रम है । यहाँ भी तो वेद-प्रचार ही उपलक्षित है ।

इसी घोषणा को वेदोपदेष्टा विद्वान् का आह्वान् भी कह सकते हैं जो सभी प्रकार के, सभी वर्गों के सभी स्तर के ज्ञान-पिपासुओं को आमंत्रित कर रहे हैं कि आओ, मैं तुम्हें वेदानुकूल आचरण की शिक्षा दूंगा, तुम्हारे जीवन को सभी प्रकार से सुन्दर, सरस, सुखी बनाने वाला अमृतोपम वेदोपदेश तुम्हें दूंगा। यह भी आम आदमी को वेद से जोड़ने का सत्प्रयास ही कहा जायेगा ।

इस आह्वान् का एक तीसरा आयाम भी है । अर्थात् एक सद्गृहस्थ वेदज्ञ विद्वानों सतत् ब्रह्म में विचरण करने वाले ब्रह्म वेताओं को सादर-सादर आमंत्रित कर रहा है कि आप सभी ओर से, बहुलता से, वेदाधारित नानाविध उपदेश देने हेतु मेरे यहाँ पधारें मुझे कृतार्थ करें ।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रावणी पर्व का हमारे लिये अनन्य साधारण महत्व है और इससे जुड़ी वेद प्रचार की परंपरा भी सार्वकालिक, सार्वभौमिक उपादेयता रखती है । समावर्तन के अवसर पर आचार्य अपने स्नातक शिष्य को जो उपदेश देता है उसका भी सार यही है कि ज्ञान-यज्ञ में आहुतियाँ सतत् पड़ती रहनी चाहिये, धर्माचरण, सत्याचरण, वेदाध्ययन, वेद प्रचार हेतु प्रवचन की परंपरा कभी टूटनी नहीं चाहिये । आचार्य का स्पष्ट आदेश है कि —

सत्यं वद । धर्मंचर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः। और आगे मा व्यच्छेत्सी कहकर स्नातक को आदेश दिया कि यह परंपरा कभी भी भंग मत करना, इसे कभी मत तोड़ना । ज्ञानोपासना चलती रहे, वेद प्रचार होता रहे, वेद का महत्व क्या है, वेदाध्ययन के क्या लाभ है आदि — अथर्ववेद के इस मंत्र में वर्णित हैं — **ओं स्तुतामया वरदा वेदमाता** अथर्व १९/७१/०१

**भावार्थ :-** स्तुति करते हम वेद प्रभु की, जो पालक प्रेरक माता है
पावन करती मनुज मात्र को, और सच्ची सुखदाता है ।
आयु, बल, सन्तति, पशु, कीर्ति, धन, विद्या बुद्धि का दान ।
सब कुछ देकर हमें दिया है, मोक्ष मार्ग का उत्तम ज्ञान ।
जीवन में अपनायें हम प्रभु की कल्याणी वाणी को ।
जो दुःखों से छुटकारा देती सुखी बनाती प्राणी को ।।

आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा
जवाहर नगर, पटियाला चौक
जीन्द-१२६१०२
दूरभाष : ०१६८१-२२६१४७
मो० : ०९४१६२९४३४७

—०—

**यज्ञ का सार – तथा प्रकार – तथा प्रकृति की प्रवृत्ति अनुकरण यज्ञ**

# यज्ञ किसे कहते हैं

**– पं० उम्मेद सिंह 'विशारद'**

वैदिक प्रचारक

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते है कि यज्ञ उसको कहते हैं जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथा योग्य शिल्प, अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या, उसमें उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र आदि जिनसे वायु-वृष्टि-जल औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ ।

**अग्नये परमेश्वराय जलवायुमुद्धिकरणाय च होत्र हवनं**
**यस्मिन कर्मणि कियते तदग्निहोंत्रम ।।**

अर्थात् – अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि व ईश्वर की आज्ञापालन करने के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते है उसे अग्निहोत्र कहते हैं ।

**यज्ञ का सार –** राजा जनक द्वारा यज्ञ के अवसर पर ऋषि उद्दालक द्वारा पूछे गये प्रश्न –

(१) किं स्विदः यज्ञस्य आत्मा -- यज्ञ की आत्मा क्या है ?

उत्तर – स्वाहा यज्ञस्य आत्मा – स्वाहा यज्ञ की आत्मा है ।

(२) किं स्विदः यज्ञस्य प्राण – यज्ञ का प्राण क्या है ?

उत्तर – न मम यज्ञस्य प्राण – ईदं न मम मेरा कुछ नहीं यज्ञ का प्राण है ।

(३) किं स्विदः यज्ञस्य सार – यज्ञ का सार क्या है ?

उत्तर - सुरभिं यज्ञस्य सार – सुगन्धि यज्ञ का सार है ।

**विचार –** जन्म से मृत्यु तक अग्निहोत्र से अश्वमेघ यज्ञ तक सत्-कर्म व्यवहार ।

नित्य सात्विक आत्म विचार । परोपकारी कर्म । दान तथा प्रकृति द्वारा नित्य सतत पदार्थो द्वारा लोक कल्याण क्रिया का आत्मबोध । निःस्वार्थ प्राणी मात्र की सेवा । निरअहंकारी जीवन व्यतीत तथा लोक प्रियता प्राप्ति में भी सम रहना ही वास्तविक यज्ञ है ।

## त्रिविध यज्ञ

**१. सात्विक यज्ञ :-** निःस्वार्थ भाव से फल की इच्छाओं को छोड़ कर जो अग्निहोत्र-परोपकारी कार्य-वेदानुसार ईश्वरीय आज्ञा का पालन प्रकृति के पदार्थ जैसे सूर्य चन्द्रमा, वायु, जल, पृथ्वी, अन्न व नक्षत्र आदि के परोपकारी कार्यों की नित्यता आदि से अपने को जोड़ना ही सात्विक यज्ञ है ।

**२. राजसिक यज्ञ –** अर्थात् फल की इच्छा वैभव प्रदर्शन ।

ऐश्वर्य प्रदर्शन के लिये जो अर्थात्–इस भौतिक युग में समृद्ध मानवों द्वारा जो भी यज्ञ व

परोपकारी दान व सामाजिक कार्य, की वाह वाही के लिये उत्सुक होना । दिये गये दान को शिलालेखों पर अंकित कराने की प्रवृत्ति । तथा सत्संग व अन्य सभाओं में उच्च स्थान पर बैठने की प्रबल इच्छा। तथा विद्वता होने पर सम्मान न मिलने का रोष आदि ये सब राजसिक यज्ञ कहलाते हैं ।

**३. तामसिक यज्ञ** – अपने निजि स्वार्थ के लिये विधि विहीन यज्ञ करना और जहाँ सम्मान मिले वहीं दान देना । व अपने घरों में उत्तम विद्वानों द्वारा यज्ञ व संस्कार न कराना । तथा बड़े-बड़े यज्ञों को कराकर अपना नाम ऊँचा कराने की प्रवृत्ति । तथा अहंकार की अधिकता । तथा दिये गये दान, व विद्वता, सम्पन्नता, व पद का अभिमान होना तथा लोकप्रियता के लिये यज्ञों को कराना आदि आदि तामसिक यज्ञ तथा प्रतिस्पर्धा हेतु यज्ञ करना भी तामसिक यज्ञ कहलाते हैं ।

## यज्ञ के प्रकार

भगवत गीता में योगी राज श्री कृष्ण ने १२ प्रकार के यज्ञ बतायें हैं –

**१. ब्रह्म यज्ञ** – प्रत्येक क्रिया को आत्मानुकूल करने के लिये साधनों को आत्मा के लिये साध्य बनाना।

**२. भगवत रूप यज्ञ** – प्रत्येक कृत्य को ईश्वरीय आज्ञा अर्थात् सत्य को आधार मानकर करना।

**३. अभिन्नतमरूप यज्ञ** – असत्य कर्म से विमुख होकर अन्तःकरण में ईश्वर की स्तुति में लीन होना, अर्थात् ईश्वर से भिन्न अपनी सत्ता न समझना अपनी सत्ता को ईश्वर प्रदत्त समझना ।

**४. सयंम रूप यज्ञ** – अपनी कर्मेन्द्रियों को विषयों से पृथक रखना ।

**५. विषय हवन रूप यज्ञ** – व्यवहार काल में इन्द्रियों को विषयों में संयोग होने पर भी उनमें राग द्वेष पैदा न होने देना ।

**६. समाधि रूप यज्ञः** – मन बुद्धि सहित सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्ति न होने देना । मन बुद्धि समस्त इन्द्रियों को रोक कर ज्ञान से समाधि में स्थित हो जाना ।

**७. द्रव्ययज्ञः** – सम्पूर्ण प्राप्त पदार्थो व धन को अपने लिये सामान्य रख कर निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा में लगा देना ।

**८. तपोयज्ञः** – प्रत्येक यज्ञीय, परोपकारी कार्य व जीविका उपार्जन साधन में पुरूषार्थ से सत्य पर चलना तथा प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितियों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करके सम रहना ।

**९. योग यज्ञः** – प्रत्येक क्षण ईश्वर का आभास होना, तथा ईश्वर को, सत्य को, आर्ष ज्ञान को आत्मसात कर समाधित होना और ईश्वर को अपना परम मित्र समझना ।

**१०. स्वाध्याय रूप ज्ञान यज्ञः** – सृष्टिक्रम ज्ञान, आर्षज्ञान, शास्त्रों का नित्य स्वाध्याय करके, परोपकार हेतु अर्जित ज्ञान को दूसरों को बांटना ।

**११. प्राणायाम रूप यज्ञः** – प्रत्येक प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों को व शरीर को स्वस्थ रखना तथा संयमित करके व दीर्घ आयु बनना ।

**१२. सतम्वृत्ति यज्ञः –** नियमित दिन चर्या, नियमित सात्विक आहार, अपनी वृत्तियों पर आधिकार व अपने प्राणों को केन्द्रित करके इच्छानुसार कार्य लेना ।

## ध्यानाकर्षण

महर्षि दयानन्द सरस्वती को संसार को सर्वोच्च देन यज्ञों से जोड़ना है । प्राचीन पद्धति वेदानुकूल उत्तम सामग्री द्वारा यज्ञों को करना, उनको नित्य क्रम में शामिल करना, उनका आदेश है ।

ऋग्वेद में पहला मंत्र अग्निमिले पुरोहितं यज्ञस्य से प्रारम्भ हुआ है क्योंकि अग्नि द्वारा ही संसार चल रहा है । ईश्वर ने प्रत्येक जीव व पदार्थों में अग्नि को दिया है, अग्नि जीवन का आधार है । प्रातःकाल रात्रि को भगाने के लिये हमारा सर्व प्रथम अतिथि अग्नि है, सूर्य की किरणों प्रथम अतिथि के रूप में अग्नि ही है । इसलिये हमारा सर्वप्रथम देवता अग्नि है । यदि अग्नि न हो तो सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक क्षण भी न चले ।

यज्ञ की अग्नि हमारे जीवन को दीर्घायु, निरोग व सात्विक बनाता है, अग्नि का गुण है पदार्थ को सूक्ष्म करके उसकी गुणवत्ता का विस्तार करना, अग्नि पदार्थ को कई गुणा बढ़ा देती है । यह शक्ति केवल अग्नि तत्व में ही है, अन्य किसी भी तत्व में नहीं है । जल में कोई पदार्थ डाले तो सड़ जायेगा, वायु में कोई पदार्थ चूर्ण बना कर डाले तो वह उड़ कर नष्ट हो जायेगा । पृथ्वी पर कोई पदार्थ डाले तो वह सड़कर दुर्गन्ध पैदा करेगा । अग्नि में कोई भी पदार्थ डाले तो वह उसे सूक्ष्म करके कई गुना बढ़ा देती है । अर्थात् अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को सक्रिय किये हुए हैं ।

यज्ञ की आहुति अग्नि द्वारा अविलम्ब तीनों लोकों में पहुँच जाती है, वह वायु लोक, विद्युत लोक, इन्द्रलोक देवों के सान्निध्य से तीनों लोकों में पहुंच जाती है । पृथ्वी का देवता अग्नि है । अग्नि के कई रूप है वमुख है । काली, कराली, लाल, रक्तीय, आदि । इसलिये प्राचीन मनीषियों ने वेदानुसार मानव जीवन के सोलह संस्कारों में अग्नि को माध्यम बनाया है और संसार का प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी रूप में चाहे वह अग्निहोत्र हो चाहे मोमबत्ती, अग्रबत्ती, धूपबत्ती, दिया आदि हो । अग्नि को प्रथम रख कर ईश्वर की आराधना करता है । जीवन की दिनचर्या में प्रत्येक सात्विक कार्य वेदानुकूल कार्य ही वास्तविक यज्ञ है ।

आदरणीय पाठक जी, यह तो यज्ञ के संक्षिप्त भौतिक व लौकिक लाभ का वर्णन किया है इससे कहीं अधिक आध्यात्मिक लाभ मिलते हैं ।


गढ़ निवास मोहकमपुर देहरादून
उत्तराखण्ड
मो०: ९४११५१२०१९


—०—

# हिन्दी साहित्य को महर्षि दयानन्द का अवदान

**– परीक्षित मंडल प्रेमी**

उन्नीसवीं शताब्दी से भारतीय इतिहास में स्वर्णिम प्रभात का आरम्भ होता है । इस काल में साहित्य, शिक्षा, धर्म, दर्शन, भाषा, ज्ञान विज्ञान का विकास नये-नये रूपों में हो रहा था । सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, दृष्टिकोणों में परिवर्तन और आध्यात्मिक आन्दोलनों के रूप में जनजीवन के विभिन्न चौराहों पर एक नई चेतना उत्पन्न हो रही थी । भारतीय मनीषियों ने इस समय अपनी मौलिक सृजन प्रतिभा का परिचय दिया । इस समय देश, धर्म, भाषा, साहित्य तथा इतिहास के विविध पक्षों पर सद्ग्रन्थों की रचना आरम्भ हुई । यह काल हिन्दी साहित्य रचना और परिमाण की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध, विपुल और व्यापक रहा है । इस समय अनेकानेक काव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य और गद्यग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें भारतीय सनातन सांस्कृतिक आर्ष आदर्शों के दिव्य स्वर उद्घोषित हुए हैं । अनेक नाटकों तथा कहानियों की रचना हुई, जिनमें सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक उत्थान-पतन के सजीव चित्र है । अनेक प्राचीन आर्षग्रन्थों की टीकाएँ हुईं, जिनमें जीवन के नैतिक, मर्यादित, सांस्कृतिक आदर्शों के सुरुचिपूर्ण मोती मिलते हैं । ऐसे अपर स्वर्णिम काल में हिन्दी के विशाल रंगमंच पर एक मंत्रद्रष्टा महामानव का आगमन हुआ, जिन्होंने अपनी सारस्वत साधना के बल पर खड़ी बोली हिन्दी गद्य साहित्य में एक महार्घ क्रान्तिकारी परिवर्तन किया । अपने आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक ओज-तेज से निखिल संसार को आलोकित कर अभिभूत किया । अपने विराट व्यक्तित्व की अप्रतिम गरिमा से भारतवर्ष का गौरव समस्त संसार की दृष्टि में ऊँचा उठाया । वे थे – महाप्राज्ञ महर्षि दयानन्द सरस्वती । इन्होंने हिन्दी भाषा की अनन्य सेवा करके उसे राष्ट्रभाषा के पद के योग्य बनाया। सुप्रसिद्ध साहित्यकार यदुवंश सहाय ने लिखा है -- ''हिन्दी को समस्त भारत के निवासियों की भाषा बनाने का विचार सबसे पहले महर्षि दयानन्द के मस्तिष्क में आया । वे इसके प्रचार और प्रसार में तुरन्त संलग्न हो जाते हैं । वे अपने समय के संस्कृत के सबसे बड़े विद्वान् थे और मातृभाषा गुजराती पर भी उनका अधिकार था । परन्तु राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की कल्पना करके इन्होंने अपनी चमत्कारिक बुद्धि का परिचय दिया था । विश्व के आदिग्रन्थ वेदों का भाष्य सर्वप्रथम हिन्दी (आर्यभाषा) में करके हिन्दी भाषा भाषियों के लिए वेदों का पढ़ना सर्व सुलभ कर दिया । इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती पर हिन्दी भाषियों को ही नहीं, अपितु समूचे आर्यावर्त को गर्व है । महर्षि दयानन्द सरस्वती को परमोत्कृष्ट लेखक तथा अधीती धर्मोपदेशक मानते हुए मिश्र बन्धुओं ने गद्गद् कण्ठ से कहा है – ''महर्षि दयानन्द ने जितने भाषाग्रन्थ लिखे, उनमें वर्तमान शुद्ध हिन्दी का ही प्रयोग किया है। आपकी भाषा अत्यन्त सरल और सहज होती थी । संस्कृत के उद्भट विद्वान् होने पर भी आपने विशेषतया हिन्दी को ही आदर दिया और अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे । महर्षि जी द्वारा हिन्दी भाषा

में रचित अमरग्रन्थों की सूची इस प्रकार है — सत्यार्थ प्रकाश,वेदांग प्रकाश, पंच महायज्ञ विधि, संस्कार विधि, गोकरुणानिधि, व्यवहार भानु, वेद विरुद्ध मत खण्डन, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ऋग्वेद भाषाभाष्य, यजुर्वेद भाषाभाष्य, आर्याभिविनय आदि । महामनीषी दयानन्द सरस्वती के इन अमरग्रन्थों का प्रचार और प्रसार मानसरोवर से कन्याकुमारी तक और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक ही नहीं, बल्कि विराट फलक पर विदेशों में भी अवाधगति से हुआ है ।''

महाप्राण महर्षि दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी और शिक्षा क्रम में इन्होंने संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन—अनुशीलन किया था । इन्होंने हिन्दी भाषा कभी किसी विद्यालय में नहीं पढ़ी । मिश्र बन्धुओं ने लिखा है कि हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में ऋषि दयानन्द सरस्वती का योगदान असाधारण है । इनकी दृष्टि सूक्ष्मदर्शिनी और सारसत्य ग्राहिणी थी । इन्होंने निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे व्याकरण ग्रन्थों के आश्रय से वेदमंत्रों की सुसंगत तथा व्यवस्थित व्याख्या हिन्दी में प्रस्तुत की । इनकी वाणी में देशभक्ति, राष्ट्रहित तथा मानव सेवा की त्रिवेणी अजस्त्र प्रवाहित होती थी । इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि परमोदात्त जीवन दर्शन तथा साधना प्रणाली और महान आदर्शों से आर्यावर्त श्रेयस और प्रेयस, दोनों को प्राप्त कर सकता है । आर्यावर्त के आर्य सनातनधर्म के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित करने के लिए सशक्त संवाद शैली में सत्यार्थप्रकाश की रचना की । इससे एक प्रकार की नवीन चेतना भारतीय जनमानस में संचारित हुई । आसेतु हिमालय ऋषिवर के दिव्य उद्घोष से आन्दोलित हो उठा । अपने प्रचण्ड पौरुष, ओजपूर्ण वाणी और क्रान्तिकारी भावनाओं तथा वैज्ञानिक विचारों के साथ स्वामी जी ने हिन्दी जगत में पदार्पण किया । तब वीरपूजा की अपनी स्वाभाविक भास्वर भावना के कारण हिन्दी संसार में हिन्दी के जनक कहकर सम्मानित किया । डा० विजयेन्द्र स्नातक ने भी लिखा है — ''आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से एक शताब्दी पूर्व अपना लेखन हिन्दी में ही प्रारम्भ किया था । स्वामी जी हिन्दी भाषा को आर्य भाषा कहकर पुकारते थे । सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना के बाद आर्यभाषा को आर्यसमाज की व्यवहार भाषा माना और प्रत्येक आर्य समाजी के लिए इस भाषा का सीखना अनिवार्य किया गया । आर्य समाज के दस नियम हिन्दी में ही बने और इस प्रकार हिन्दी आर्य समाज की व्यवहार भाषा, सम्पर्क भाषा और लोकभाषा बन गई ।'' अहिन्दी भाषी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्रीय भावात्मक एकता तथा अखण्डता के उद्‌बोधन और स्वतंत्र चिन्तन मनन की दृष्टि से आर्यभाषा के विराट वर्चस्व को पहचाना था । महर्षि ने न केवल हिन्दी भाषी प्रदेशों के जनमानस को ही, वरन् आसमुद्रात् हिमालय समस्त भारतीय महादेश की राष्ट्रीय चेतना और सामासिक संस्कृति को एक विराट फलक के साथ नवीन भावात्मक मोड़ दिया था । ओज और स्फूर्ति स्पन्दित वाणी तथा सत्य भूषित यह उद्घोषणा अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लिए सर्वथा नई थी, फिर भी यह वह सत्य वाणी थी जो न किसी राजनैतिक मतवाद, संकीर्ण सम्प्रदायवाद, कुटिल जातिवाद में आबद्ध थी और न वह किसी प्रान्तवाद में सिमटी हुई ।''

महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय मानववाद के एक पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व थे । हिन्दी के माध्यम से महर्षि दयानन्द ने जिन मानव मूल्यों की स्थापना की है, वे भारतीय समाज की आधुनिक प्रगति, समुन्नति तथा रचनात्मक दृष्टि के अनुकूल हैं । स्वामीजी ने अपने समय में द्रष्टा के रूप में उदात्त राष्ट्रीयता, मानववाद और आधुनिकता की भूमि तैयार कर दी थी । हमारे समाज और राष्ट्र का जितना भी वास्तविक तथा सर्वांगीण विकास हुआ है, वह उसी मधुमती भूमि पर हुआ है । वाक्पति दयानन्द सरस्वती के महार्घ व्यक्तित्व से प्रेरित-प्रभावित होकर तमिल भाषाभाषी श्रीसुब्रह्मण्यम भारती, बंगला भाषाभाषी कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महान क्रान्तिकारी नेता सुभाष चन्द्र बोस, गुजारती भाषाभाषी मोहनदास करमचन्द गाँधी, मराठी भाषाभाषी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि ने सहृदय हिन्दी भाषा को ही भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है । इतना ही नहीं, जिस महासभा में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया था, इसमें प्रस्तावक भी तमिलनाडू के श्रीगोपाल स्वामी आयंगर ही थे । इस प्रकार हिन्दीतर भाषाभाषियों ने महर्षि दयानन्द सरस्वती से प्रेरणा ग्रहण कर उदारता पूर्वक सहयोग देकर हिन्दी भाषा को ही विश्व मंच पर प्रतिष्ठित किया तथा भारत की राष्ट्रीय एकता और सामासिक संस्कृति को बल प्रदान किया । महर्षि दयानन्द ने एकबार कहा था — दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं, जब कश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रन्थ आर्यभाषा (हिन्दी) में लिखे और प्रकाशित किए हैं । इसी उद्देश्य से भारत के प्रत्येक बच्चे को प्रान्तीय भाषा के अक्षरों के साथ-साथ देवनागरी अक्षरों का अभ्यास आवश्यक बताया गया है । मैंने आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य के लिए आर्यभाषा का ज्ञान आवश्यक ठहराया है । पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम आर्यभाषा ही रक्खा गया है । महर्षि दयानन्द के हिन्दीप्रेम को महात्मा गाँधी ने अपनाया । महात्मा गाँधी से कांग्रेस ने ग्रहण किया और कांग्रेस ने संविधान में राष्ट्रभाषा को स्थान दिया । यह स्वामीजी की मधुमती प्रतिभा थी, जिसे हिन्दी को भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा दी गई ।

आर्य भाषा भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा जातीय जीवन की अस्मिता का प्रतीक है । भव्य भारत की भारतीयता हिन्दी भाषा और इसके वाङ्मय में निहित है । महर्षि दयानन्द सरस्वती इसके अप्रतिम वैतालिक और अनन्य पुरोधा थे । स्वामीजी स्वभाषा, स्वदेश, स्वराज्य, स्वधर्म तथा स्वसंस्कृति को सर्वोपरि मानते थे । वे कहा करते थे कि स्वभाषा, स्वधर्म, स्वराज्य और स्वसंस्कृति से ही स्वराष्ट्र का सर्वांगीण विकास होता है । उनका दृढ़ मत था कि एकधर्म, एकभाषा, एक संस्कृति तथा एकलक्ष्य हुए बिना राष्ट्र का पूर्ण हित और जाति की समुन्नति बहुत कठिन है । एकधर्म के लिए इन्होंने वैदिक धर्म तथा एकभाषा के लिए हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को अपनाने का सिंहनाद किया था । इन्होंने ही कहा था — लिपि देवनागरी और भाषा आर्यभाषा है । इस प्रकार स्वामी दयानन्द हिन्दी के अनन्य पुरोधा थे । इन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया । इनकी अमर कृतियों में

विश्वबन्धुत्व की भास्वर भावना, समरसता की सत्यता और स्पष्टता के शुभ्र स्वर मिलते हैं। इन्होंने सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश नामक विचारात्मक ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में लेखन और प्रकाशन कर तद्युगीन रूढ़िवाद, मतवाद, अवतारवाद और बहुदेववाद पर कुठाराघात कर अपने समय के मनीषी चिन्तकों के मन-मस्तिष्क में मौलिक तथा रचनात्मक विचारों से हलचल मचा दी थी।

आर्यावर्त के आर्य सनातन धर्म एवं संस्कृति के उपासकों के लिए जो कुछ सर्वश्रेष्ठ, सत्य और उपयोगी था, वह सब कुछ स्वामीजी ने समेटकर बटोरकर हमें अपने अपने अमर ग्रन्थों के रूप में दे दिया। इनके अमरग्रन्थों में सत्य का जय गान है। रूढ़िवाद और मतवाद की शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष का अभियान है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का वैदिक स्वर निनादित है। इस प्रकार महाप्राज्ञ दयानन्द सरस्वती का विराट व्यक्तित्व और अप्रतिम कृतित्व हिन्दी भाषा और साहित्येतिहास के धरातल पर निःसन्देह एक अभिनव क्रान्तिद्रष्टा और युगान्तकारी साहित्य एवं साहित्यकार के रूप में प्रकट हुआ। डा० कृष्णबिहारी मिश्र ने लिखा है कि "देशोद्धार के लिए वे देश में एक भाषा की आवश्यकता का अनुभव करते थे। इसके लिए इनकी पूत दृष्टि में हिन्दी ही एकमात्र उपयुक्त भाषा थी। हिन्दी को दयानन्द आर्यभाषा कहते थे और आर्यसमाज के सदस्यों के लिए हिन्दी सीखना इन्होंने अनिवार्य कर दिया था। हिन्दी में आर्यभाषा नामक पत्र का प्रकाशन की प्रेरणा भी दयानन्द की थी। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित ने संस्कृत के बाद अपनी मातृभाषा गुजराती की ओर न जाकर हिन्दी को अपनाया और अपनी देशभक्ति का प्रमाण दिया। यथार्थ में उस युग में किसी अन्य मनीषी की ऋषि दयानन्द के समान सूक्ष्मदर्शिनी और निर्माणकारी दृष्टि नहीं मिली थीं। इन्होंने हिन्दी में अपने ग्रन्थों को रचना कर लोक मंगलकारी परमोदात्त वैदिक आदर्शों की स्थापना की।"

एक दिन हरिद्वार की एक सभा में महामनीषी दयानन्द सरस्वती ने अपने एक शिष्य को संबोधित कर कहा था — "नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्यभाषा सीखना कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबी को छोड़कर, ब्रह्मावर्त की सभ्य भाषा ही आर्यभाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा के सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है।" इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है। स्वामी जी के इस महार्ध उपकार तथा निर्माणकारी विमल दृष्टि को अधीती आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार स्वीकार किया है — "स्वामीजी ने अपना सत्यार्थप्रकाश तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित किया ही, वेदों के भाष्य संस्कृत और हिन्दी दोनों में किए। स्वामीजी ने संवत् १९३२ में आर्यसमाज की स्थापना की और सब आर्य समाजियों के लिए हिन्दी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बहुत तेजी से हुआ। आज जो पंजाब में हिन्दी की पूरी चर्चा सुनाई देती है, इन्हीं के बदौलत है। यह महर्षि दयानन्द सरस्वती

की भाषा भक्ति, देशभक्ति और प्रगतिशीलता का पुष्ट प्रमाण है । गुरु विरजानन्द से प्रेरणा प्राप्त करके महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी भाषा में विपुल एवं विशालकाय ग्रन्थों की रचना की थी । जो विविधता की दृष्टि से विपुल और समृद्ध है ।''

हिन्दी भाषा के अनन्य पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती यदि असमय में ही काल कवलित न होते तो हिन्दी भाषा और साहित्य को न जाने कितना समृद्ध करते । उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अनेक कवि तथा लेखक हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आए, जिनमें महात्मा श्रद्धानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महामानव महात्मा गांधी का नाम उल्लेखनीय है । यद्यपि महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्कृत और गुजराती के उद्भट विद्वान् थे, तथापि हिन्दी भाषा बोलने और देवनागरी लिपि में लिखने और मंचों पर भाषण करने का उनका दृढ़ संकल्प राष्ट्रीय स्तर पर एक सांस्कृतिक संकल्प था, जिसका मुख्य लक्ष्य भारत को भाषा के स्तर पर एकसूत्र में आबद्ध करना था तथा वैदिक गौरवगान के प्रति अप्रतिम उत्साह और आग्रह था । इनकी कारयित्री नवोन्मेषकारिणी प्रतिभा के कारण ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के पद पर अधिष्ठित होने का गौरव मिला और लिपि देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि होकर अखिल भारतीय मंच पर ही नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित हुई ।


अध्यापक

संत फ्रांसिस उच्च विद्यालय

पोड़ैयाहाट, गोड्डा-८१४१३३

झारखण्ड

मो० : ९१६२२०८००५


—o—


## आर्यसमाज कलकत्ता का १३१वाँ वार्षिकोत्सव

**२४ दिसम्बर २०१६ से १ जनवरी २०१७ पर्यन्त**

स्थान :- हृषिकेश पार्क, आम्हर्स्ट स्ट्रीट

कोलकाता-७००००९

**आमन्त्रित विद्वान् :-** आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय

श्री नरेश दत्त आर्य (भजनोपदेशक)

# कर्मफल सिद्धान्त

– सत्यप्रकाश जायसवाल

चेतन जीव न उत्पन्न होता है, न मरता है, न यह किसी कारण से उत्पन्न हुआ है । यह चेतन जीव अजन्मा है । जीवात्मा का शरीर से संयोग होने से जन्म तथा वियोग होने से मृत्यु होती है। परमात्मा ने व्यक्ति को कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है । वह कर्मानुसार ही व्यक्ति को जन्म प्रदान करता है । इस जन्म में भी व्यक्ति की अलग-अलग जो स्थितियाँ और परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होती है, वह व्यक्ति के अपने कर्म के कारण होती है । व्यक्ति द्वारा जो क्रियमाण कर्म किये जाते हैं जिनका तत्काल फल नहीं प्राप्त होता है वह कर्म संचित कर्म कहलाते हैं । यही संचित कर्म प्रारब्ध (भाग्य) बन जाता है । प्रारब्ध कर्म का जो फल व्यक्ति को प्राप्त होता है वह कुछ और नहीं व्यक्ति के कर्मों का फल ही होता है ।

इसको एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं — जब एक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ की कमाई को संचित करते हुए किसी बैंक में स्थिर निधि करता है तथा उसकी समयावधि पूर्ण होने पर उसको ब्याज सहित अधिक धनराशि प्राप्त होती है । दूसरी ओर एक व्यक्ति अपना साधारण कर्म करते हुए कोई संचय नहीं करता । अतः उसकी स्थिति यथावत् बनी रहती है । अब कोई कहे कि बैंक मैनेजर ने प्रथम व्यक्ति के साथ पक्षपात करते हुए उसको अधिक धनराशि प्रदान किया है, यह अनुचित आरोप है । उस व्यक्ति द्वारा अधिक धनराशि प्राप्त करना उसके संचित संचय का ही परिणाम है । दूसरा व्यक्ति जो कुछ भी संचय नहीं करता उसको बैंक द्वारा कुछ भी प्राप्त नहीं होता ।

इसी प्रकार परमात्मा भी व्यक्ति के अच्छे व बुरे कर्मों का यथावत् फल प्रदान करता है जिसके कारण कोई निर्धन व कोई धनी, कोई मूर्ख व कोई बुद्धिमान, कोई दुःखी व कोई सुखी, कोई सुन्दर व कोई कुरूप, कोई रोगी व कोई निरोगी तथा कोई परिवार वाला तो कोई बिना परिवारवाला दृष्टिगत होता है । 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।' हमें अपने किये हुए शुभ व अशुभ कर्मों के फल को अवश्य भोगना पड़ता है । ईश्वर न्यायकारी है वह सबके साथ न्याय ही करता है।

दूसरा उदाहरण इस प्रकार समझा जा सकता है — जैसे किसी कक्षा में कोई अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाता है । जो विद्यार्थी ज्यादा परिश्रमी होते हैं उन्हें अधिक सर्वोच्च अंक प्राप्त होते हैं । जो कम परिश्रमी होते हैं उन्हें साधारण अंक प्राप्त होते हैं । वे केवल मात्र उत्तीर्ण हो जाते हैं तथा जो परिश्रम नहीं करते हैं वे असफल हो जाते हैं । जो असफल होने के बाद भी परिश्रम नहीं करते उन्हें और निचली कक्षा में उतार दिया जाता है या विद्यालय से ही बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस व्यवस्था में क्या अध्यापक का कोई दोष होता है ? नहीं, यह विद्यार्थियों के परिश्रम का ही परिणाम हुआ करता है ।

इसी प्रकार ईश्वर भी सबके कर्मों का फल प्रदान करता है । किसी को उसके कर्मानुसार बहुत ऊँचा उठा देता है तो किसी को उसके कर्मानुसार मनुष्य योनि से पृथक कर पशु व पक्षी योनि में भी भेज देता है । यही ईश्वर की न्याय व्यवस्था है ।

# गौरक्षा बनाम गौ-पालन

गौ-रक्षा का एक ऐसा मुद्दा है जो कमोबेश सारे देश में प्रतिध्वनित होता रहा है, यह मुद्दा सामाजिक, धार्मिक रूप से बहुसंख्यक जनता के हृदय की आवाज तो रहा ही है, राष्ट्रीय स्तर पर भी यह बड़ा विस्फोटक विषय रहा है । कई सारे संगठन सिर्फ गौ-रक्षा के ही नाम पर चल रहे हैं । बहुत सारे लोगों का पूरे जीवन का कार्य ही गौ-रक्षा को समर्पित रहा है । गौ-रक्षा या गौ-रक्षा के नाम पर जो कुछ भी चलता है वह सब देश के दो सबसे बड़े धार्मिक सम्प्रदायों के बीच चरम तनाव और वैमनस्य का कारण भी बनता रहा है ।

हिन्दुओं ने गौ-रक्षा के प्रश्न को आस्था का, अपने हिन्दुत्व का और अपनी जातीय अस्मिता का जैसे प्रश्न बना रखा है, गौ-रक्षा के नाम पर लोगों ने अपनी जान तक निछावर कर दी है । बाकायदा आन्दोलन चलाये जा रहे हैं । विशेषकर बकरीद जैसे कुछ त्यौहारों के आते ही दोनों पक्ष जैसे एक दूसरे को नीचा और बेअसर दिखाने की कवायद में जुट जाते हैं । एक सम्प्रदाय जान बूझ कर बहुसंख्यक समाज को चिढ़ाने के लिए गायों को काटता है और बहुसंख्यक कार्यकर्ता गायों के लेकर आने जाने वाली ट्रकों और वाहनों को रोकने में जुट जाते हैं । हिंसक झड़पें तो बहुत ही आम बात है ।

और इन सबके बीच पिसता रहा है वह मूक परोपकारी पशु जिसे माता की संज्ञा से सुभूषित किया जाता है और जिसके लिए जीने मरने की कसमें खाई जाती हैं, पर जिसकी रक्षा के लिए कुछ ठोस काम हो नहीं पा रहा है, या, तात्कालिक परिस्थितियों में कुछ ठोस कर पाना संभव नहीं हो रहा है ।

गौ-रक्षा और प्रकारांतर से गौ-वध को रोकने के मूल प्रश्न के दो बड़े आयाम हैं । एक आयाम है समुदाय विशेष द्वारा गायों की हत्या का, यह त्यौहार विशेष के अवसर पर की जाने वाली कुर्बानी (या बलि) का हिस्सा है और ज्यादातर सांकेतिक (symbolic) है । हाँ, कई बार जान बूझ कर सार्वजनिक स्थानों पर गाय की कुर्बानी दी जाती है ताकि बाकी लोगों को चिढ़ाया जा सके । किन्तु यह एक ऐसा आयाम है जिसे एक बार को नजरंदाज किया जा सकता है क्योंकि यह पूरे प्रश्न का नगण्य हिस्सा है । सारे साल अबाध चल रहे गौ-वध के सामने महज एक दिन होने वाली इस घटना का परिप्रेक्ष्य भी अलग है और इसका समाधान भी अपेक्षाकृत आसान है जो समुदायों के आपसी बातचीत से निकाला जा सकता है । पहले भी कई मुद्दों पर विभिन्न समुदायों और सम्प्रदायों के लोगों ने आपसी सौहार्द्र और सामंजस्य के लिए मसलों को हल किया है ।

दूसरा और बहुत बड़ा आयाम है कत्लगाहों में धड़ल्ले से चल रहे गौ-वंश के नाश का । भारत पशुधन की संख्या के लिहाज से सारे विश्व में पहले नम्बर पर है अर्थात् पालतु घरेलू पशुओं की सर्वाधिक संख्या भारत में रहती है ।

किन्तु आज मशीनचालित कत्लगाहों की वजह से भारत बीफ का सारे विश्व में सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया है । औद्योगिक नीति के अंतर्गत मशीनचालित कत्लगाहों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जा रहा है और देश के लिए विदेशी मुद्रा का भण्डार भरा जा रहा है । हम अपने ही पशुधन का सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं और वैज्ञानिक गंभीर चेतावनियाँ दे रहे हैं कि

अगर इस अनाप-शनाप ढंग से फल-फूल रहे व्यवसाय को नियंत्रित नहीं किया गया तो अपने देश की कई पशु-नस्लों और प्रजातियों का समूल संहार हो जाएगा । जिस गति से कत्लखाने पशुओं को काट रहे हैं उस गति से उनका संवर्धन नहीं किया जा रहा है ।

गौ-रक्षा के आन्दोलन का सबसे बड़ा उद्देश्य है देश में अनाधिकृत या अधिकृत रूप से चल रहे कत्लखानों में गायों का कत्ल गैर-कानूनी घोषित करा कर सारे देश में इस पर रोक लगवाना।

इसी प्रश्न पर आकर समस्या के मूल स्रोत से रूबरू होना होता है ।

हम भारतीय, गाय को अत्यधिक महत्व देते हैं तो इसके कई कारण हैं । देसी गायों का दूध-दही-मक्खन आदि स्वास्थ्य के लिए अमृत तुल्य हैं और नए वैज्ञानिक शोध क्रमशः इन बातों को प्रमाणित करते चल रहे हैं । गाय से लगातार संपर्क रहना और गाय का दरवाजे पर होना ही कई तरह के रोगों से बचाता है । गाय के लाभ और उन पर चल रहे शोध एक अलग विस्तृत विषय है । अस्तु, यह सच है कि गायों का कत्ल रुकना चाहिए । यह भी सच है कि जिस दर से गोधन का संहार हो रहा है वह बड़ी चिंता का कारण है । किन्तु पूरी विनम्रता से कहना चाहूँगा कि सारा का सारा गो रक्षा आन्दोलन मूल की भूल का शिकार है । सारा जोर गायों की अवैध तस्करी रोकने और कटने जा रही गायों के उद्धार पर लगाया जा रहा है । बड़े स्तर पर सफलता भी मिल रही है । किन्तु अगली ही समस्या आती है कि जिन गायों को कटने से बचाया गया या जिन्हें तस्करों के हाथ से छुड़ाया गया, उन गायों का होगा क्या ? इन्हें रखा कहाँ जायेगा ? स्वस्थ गायों को तो फिर से किसानों को या गो-पालकों को दिया, बेचा जा सकता है परन्तु बहुत बड़ी संख्या में बूढ़ी और लगभग अनुपयोगी हो चली गायों के समुचित रख-रखाव और देखभाल की आवश्यकता होती है । इनके लिए बड़ी मात्रा में चारा-भूसा-चोकर, पानी एवं आश्रय की व्यवस्था करनी होती है । बीमार या विकलांग पशुओं के लिए समुचित चिकित्सा और डॉक्टरों की आवश्यकता होती है । बहुत बड़ी संख्या में कटने के लिए जा रहे बछड़ों और बैलों की व्यवस्था करना और भी कठिन और खर्चीला है क्योंकि ट्रैक्टर और थ्रेशर के इस जमाने में कृषि कार्य या परिवहन कार्य के लिए बैलों और बछड़ों का कोई उपयोग नहीं रह गया है । इतने सारे पशुओं के रख-रखाव और पालन-पोषण पर अत्यधिक खर्च होता है और इस खर्च को लम्बे समय तक व्यवस्थित रूप से उठा पाना किसी व्यक्ति या संस्था के लिए असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है ।

गौ-रक्षा आन्दोलन इन्हीं प्रमुख समस्याओं से जूझने के कारण ज्यादा प्रगति नहीं कर पा रहा और ऊर्जा, श्रम और पैसा, सभी का अपव्यय हो रहा है या ऐसे मदों में व्यय हो रहा है जिनसे बचा जा सकता है ।

जब तक हम इस समस्या के मूल तक नहीं जायेंगे तब तक गौ-वध के नाम पर हम कितना भी उद्वेलित हो लें, इसका स्थाई समाधान संभव नहीं है । गायों का वध और कत्लखानों की स्थापना का सीधा सम्बन्ध अर्थव्यवस्था से है और इस अर्थव्यवस्था को गहराई से समझना जरूरी है ।

**इस अर्थव्यवस्था के दो पक्ष हैं –**

**(१) अभाव का पक्ष :-** गौ-वध की प्रक्रिया की शुरुआत किसान के दरवाजे से होती है और कड़वी सच्चाई यही है कि ये किसान ज्यादातर उसी सम्प्रदाय से हैं जो गाय को माता कह कर बुलाता है । ब्याने के कुछ महीनों बाद जब गाय दूध देना बंद कर देती है और फिर जब पुनः

अगले प्रसव पर दूध देना प्रारम्भ करती है, तब तक के ६-८ महीने दरवाजे पर खड़ी गाय को खिलाना साधारण किसान के लिए मुश्किल हो रहा है । चारागाह बचे नहीं हैं, भूसा-चारा-पशुआहार इतना महंगा और दुषप्राप्य होता जा रहा है कि किसान इतने दिनों तक खड़ी गाय को संभाल नहीं पा रहा । किसी हद तक मजबूर हो कर ही वह अपनी गाय ज्यादातर दलालों या कसाइयों के हाथ बेच देता है, यह जानते हुए भी कि अब यह गाय संभवतः कटने चली जाएगी ।

**(२) असाधारण मुनाफे का पक्ष :-** किसान के दरवाजे पर बिक कर दलालों के हाथों ज्यादातर गायें वधशालाओं/कत्लखानों द्वारा बाकायदा नियुक्त एजेन्टों के पास पहुँचाई जाती हैं जो इन गायों/बैलों और अन्य पशुओं को कत्लखानों तक पहुँचाने की व्यवस्था करते हैं । अंतर्राष्ट्रीय बाजार में गौ-मांस की इतनी अच्छी कीमत मिलती है कि तमाम विक्रेता किसान, एजेन्टों और श्रृंखला में मौजूद बाकी सारे लोगों को अच्छा पैसा देने और पशु को काट कर उसका माँस निर्यात-योग्य बना कर निर्यात करने के सारे खर्चे निकाल कर भी कत्लखानों को असाधारण मुनाफा होता है । यही कारण है कि अतिअल्प समय में ही भारत में कई सारे अधिकृत कत्लखाने स्थापित हुए और भारत ४-५ सालों में ही विश्व का सबसे बड़ा गौ-मांस निर्यातक बन गया है ।

यह भी विडम्बना ही है कि इसी श्रृंखला में एक ओर आर्थिक अभाव और दूसरी ओर अति मुनाफा, दोनों ही कारण मिलकर गो-माँस के इस धन्धे को बढ़ावा दे रहे हैं ।

और यहाँ हम लौट कर फिर अपने मूल प्रश्न पर आते हैं कि क्या गौ-हत्या की इस सुनियोजित व्यवस्था को रोकने के लिए ऐसा कुछ किया जा सकता है कि देश को आर्थिक नुकसान न पहुँचे और गो-वंश का नाश रुक जाए । गो-मांस (बीफ) की अर्थव्यवस्था की काट भी वैकल्पिक लाभदायक अर्थव्यवस्था ही है ।

**वैकल्पिक लाभकारी अर्थव्यवस्था : गौ-पालन एवं गौ-उत्पाद आधारित उद्योग :** इस पूरे कत्लखाने के उद्योग का आधार ही किसान के दरवाजे पर बंधी हुई, अस्थायी या स्थाई तौर पर आर्थिक रूप से अनुपयोगी हो चुकी गाय ही है । अगर हम इस गाय को किसान के लिए आर्थिक तौर पर उपयोगी बना दें और एक आम किसान को, गाय पर होने वाले खर्च से ज्यादा पैसा दूध न देने वाली खड़ी गाय भी देने लगे तो किसान अपनी गाय कभी नहीं बेचेगा। किसान गाय नहीं बेचेगा तो एजेन्टों को गायों की उपलब्धता में कमी आयेगी और उन्हें गायों की खरीद-मूल्य बढ़ाना होगा । बढ़ी हुई खरीद-मूल्य पर गाय कत्लखाने के लिए कम मुनाफा देने वाली बन जायेगी और उनका ध्यान अन्य पशुओं पर जाएगा जो अपेक्षाकृत अधिक मुनाफा देंगे । पर यह होगा कैसे ?

इसके लिए जो ऊर्जा और धन और मानव-श्रम गौ-वध रोकने में खर्च हो रहा है उसे गौ-पालन की ओर मोड़ना होगा । घर घर जाकर किसान को गाय से होने वाले लाभ से अवगत कराना होगा और न सिर्फ अवगत कराना होगा अपितु किसान को जरूरत के अनुसार ट्रेनिंग और समर्थन-सहायता भी देनी होगी । किसानों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोलने होंगे । ये कोई आवश्यक नहीं कि यह सब सरकार या प्रशासन करे । जो लोग गौ-वध के विरूद्ध आन्दोलन में लगे हैं, वे भी व्यक्तिगत या संस्थागत प्रयासों से या सहकारी (कोऑपरेटिव) स्तर पर भी यह प्रशिक्षण दे सकते हैं ।

आजकल जैविक (ऑर्गेनिक) खेती पर फिर से बहुत जोर दिया जा रहा है और इसकी जैविक कृषि उत्पादों की माँग लगातार बढ़ रही है और निकट भविष्य में यह लगातार बढ़ेगी । जैविक

*(शेष पृष्ठ ७ पर)*

# सिर पर डंडा

चम्पकवती नामक वन में एक हिरण रहता था । एक दिन उसकी सुबुद्धि नामक कौए से दोस्ती हो गई । एक बार हिरण घूमते हुए बहुत दूर निकल गया । गीदड़ ने उसे देखा, तो उसके मुँह से लार टपकने लगी । उसकी भूख भी बढ़ गई । वह हिरण के पास पहुँचा । उसका हाल-चाल पूछा । फिर अपना परिचय दिया । बोला — "मैं क्षुद्रबुद्धि हूँ । तुमसे दोस्ती करना चाहता हूँ।" हिरण ने उससे मित्रता कर ली । वे कौए के पास पहुँचे ।

कौए ने गीदड़ के बारे में पूछा । हिरण ने कहा — "यह मुझसे दोस्ती करना चाहता है ।" यह सुन कौआ बोला — "तुम्हें इस अनजान गीदड़ से दोस्ती नहीं करनी चाहिए ।"

यह सुन गीदड़ का दिमाग गरम हो गया । वह बोला — "सुबुद्धि, तुम भी शुरू-शुरू में इसके लिए अनजान ही रहे होगे । फिर धीरे-धीरे मित्र बन गए । इसी प्रकार मुझे भी मित्र बना लो !"

हिरण ने भी गीदड़ का समर्थन किया । कौआ कुछ भी न बोला । हिरण और गीदड़ — मजे से रहने लगे ।

एक दिन गीदड़ और हिरण खेत में गये । वहाँ हरा और ताजा चारा पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए ।

वे अगले दिन भी गए, पर हिरण जाल में फँस गया । हिरण ने गीदड़ से मदद माँगी, पर गीदड़ के मन में तो कपट था । बोला — "आज रविवार है । मेरा व्रत है । ऐसे में मैं जाल की चर्बी वाली ताँत को कैसे अपने दाँतों से काट सकता हूँ ? कल सुबह होते ही मैं जाल काट दूँगा।" कहता हुआ वह झाड़ी में जा छिपा । हिरण उसकी मक्कारी समझ गया था ।

कुछ देर बाद वहाँ कौआ आया । उसने हिरण को जाल में देखा । उसने उसे आश्वासन दिया । बोला — "तुम्हारा मित्र गीदड़ कहाँ है ?" हिरण ने कहा — "वह मुझे खाने की ताक में है । आसपास किसी झाड़ी में बैठा होगा ।"

तभी खेत का मालिक हाथ में डंडा लिये हुए उन्हें आता हुआ दिखाई पड़ गया । कौए ने हिरण को कुछ समझाया ।

खेत का मालिक वहाँ आया । उसने हिरण को देखा तो बोला — "लगता है यह तो मर गया । तभी तो इसका पेट फूला हुआ है ।" यह सोच उसने हिरण को जाल से बाहर कर दिया।

तभी कौए ने काँव-काँव की, तो हिरण झटपट वहाँ से भाग खड़ा हुआ । खेत के मालिक ने गुस्से में उसे डंडा फेंककर मारा । हिरण तो बच गया, पर वह डंडा झाड़ी में छिपे गीदड़ को जा लगा । गीदड़ वहीं ढेर हो गया ।

**(जैसी करनी, वैसी भरनी।)**

—०—

# सूचना

## आर्य समाज कलकत्ता - युवा शाखा

आर्य समाज कलकत्ता (युवा-शाखा) द्वारा आयोजित ३०वां अन्तर्विद्यालय देश-भक्ति गीत प्रतियोगिता रविवार दिनांक २१.०८.१६ को आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी में आयोजित हुआ । कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य समाज के प्रधान श्री सुरेश चन्द्र जायसवाल जी ने की । आर्य समाज के सुप्रसिद्ध वेदज्ञ मनीषी विद्वान आचार्य डा० वेदपाल जी (मेरठ, उ०प्र०) ने दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का उद्घाटन किया । स्वातन्त्र्य समर में स्वयं को आहूत कर देने वाले चंद्रशेखर आजाद को समर्पित इस कार्यक्रम में मुख्या वक्ता के रूप में पूर्व प्रधान श्री मनीराम आर्य ने चन्द्रशेखर आजाद के जीवन पर प्रकाश डाला ।

नगर के सुप्रसिद्ध विद्यालयों से छात्र-छात्राएं एवं देश-भक्ति पर आधारित गीतों के गायन हेतु इस कार्यक्रम में उपस्थित हुए । प्रतियोगिता के परिणाम को निर्धारित करने के लिए एक निर्णायक मण्डल था जिसके निर्णयानुसार लोरेटो डे स्कूल (बहुबाजार) की छात्रा इशिका मुखर्जी ने प्रथम, आर्यकन्या महाविद्यालय की छात्रा इशानी नाग ने द्वितीय तथा श्रीशिक्षायतन स्कूल की छात्रा मधुजा चौधरी ने तृतीय स्थान अर्जित किया । इसके अतिरिक्त निर्णायकों ने चिल्ड्रेन सेमिनरी स्कूल के छात्र राहुल मिश्रा को विशिष्ट पुरस्कार से पुरस्कृत किया ।

कार्यक्रम को सफल बनाने में आर्य समाज कलकत्ता के मन्त्री श्री दीपक आर्य, युवा-शाखा के अध्यक्ष श्री प्रभाकर सेठ तथा संयोजक श्री विवेक जायसवाल अत्याधिक सक्रिय रहे । कार्यक्रम का संचालन श्री अशोक सिंह एवं श्री योगेशराज उपाध्याय ने किया ।

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित
तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३